उरियोन ऑफ इंडिया बनाम हरबंस सिंह तुली और उनके बेटे (डी. एस. तेवतिया, जे.)

नेता राम एवं अन्य बनाम जीवन लाल और एक अन्य (2), जैसा कि रिपोर्ट के पैरा 8 में दिखाई देने वाली निम्नलिखित टिप्पणियों से स्पष्ट होगाः— ,

> "इन प्रावधानों को समग्र रूप से पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि यदि मकान मालिक की आवश्यकता वास्तविक है, और वह नियंत्रक को संतुष्ट करता है, तो वह इमारत या भूमि का कब्जा प्राप्त कर सकता है, जैसा भी मामला हो।हालाँकि, यदि वह इमारत को फिर से नहीं बनाता है और इसे किसी अन्य को देता है; इसका उपयोग करें या इसे किसी अन्य किरायेदार को दे दें, तो पूर्व किरायेदार वापस कब्जे में रखने के लिए आवेदन कर सकता है।" ,

(7) उपरोक्त कारणों से, मैं पुनरीक्षण याचिका की अनुमति देता हूं और नीचे दिए गए दोनों न्यायालयों के आदेश को दरकिनार कर देता हूं और आवेदन को खारिज कर देता हूं।हालाँकि, इस मामले की परिस्थितियों में, मैं लागत के बारे में कोई आदेश नहीं देता।

एन. के. £

डी. एस. तेवतिया और एस. एस. कांग, जे. जे.

भारत संघ,-अपीलार्थी।

बनाम

हरबंस सिंह तुली और पुत्र,-उत्तरदाता।

1980 के आदेश सं. *77* से पहली अपील।

19 जुलाई, 1980।

सिविल प्रक्रिया संहिता *(1908* की वी*)*-आदेश 21, नियम *8*-बी *(*ए*)*-पंजाब पुनर्गठन अधिनियम *(1966* की एक्सएक्सएक्सआई*)*-धारा *32* और *88*-मध्यस्थता अधिनियम *(1940* की एक्स*)*-धारा *15,16,30,33* और *39*-आदेश 21 के उद्देश्यों के लिए सरकारी वकीलों की नियुक्ति करने वाले पूर्ववर्ती पंजाब राज्य द्वारा जारी अधिसूचना-चाहे वह विधायी हो और धारा *32* और *88* के अर्थ के भीतर एक कानून हो-केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन द्वारा इस तरह से नियुक्त सरकारी वकील-चाहे वह भारत संघ की ओर से अपील पेश करने के लिए सक्षम हो-एक फ़ैसले को चुनौती देने वाली आपत्ति याचिका-क्या शपथ पत्र के साथ होना चाहिए-मध्यस्थता खंड जिसमें कहा गया है कि फैसला अंतिम और निर्णायक होगा-ऐसा खंड-क्या फ़ैसले को एकसमान बनाता है। ऐसे खंड क्या यह निर्णय किसी भी आधार पर अप्राप्य बनाता है मध्यस्थ के सामने सीमा ओर रोक की जो दलील उठाई गई है ऐसी दलील क्या कोई विवाद है

(2) ए. आई. आर. **1963** एस. सी. **499**।

अनुबंध से उत्पन्न या संबंधित-इस तरह के विवाद के निर्धारण के लिए परीक्षण-मध्यस्थ को बोलने का निर्णय नहीं दिया गया-क्या कानूनी कदाचार का दोषी कहा जा सकता है।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि पुनर्गठन अधिनियम, 1966 की धारा 88 के आधार पर, पूर्ववर्ती पंजाब राज्य द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 27 के उद्देश्य से सरकारी अधिवक्ताओं की नियुक्ति के लिए जारी अधिसूचना, जिसे मौजूदा कानून का दर्जा प्राप्त है, जारी रहेगी उस क्षेत्र के लिए अच्छा रहेगा जो पुनर्गठन अधिनियम के भाग 2 के प्रावधानों के बावजूद पूर्ववर्ती पंजाब राज्य का हिस्सा था, जिसमें मौजूदा पंजाब राज्य के क्षेत्र को हरियाणा राज्य, केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़, आंशिक रूप से हिमाचल प्रदेश और शेष को पंजाब राज्य में विभाजित करने की परिकल्पना की गई है।इसका मतलब है कि उक्त अधिसूचना के उद्देश्य के लिए केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन या हरियाणा राज्य के तहत सरकारी वकील या नए पंजाब राज्य या हिमाचल प्रदेश के सरकारी वकील। इस क्षेत्र जो पहले पूर्ववर्ती पंजाब राज्य का हिस्सा था, संहिता के आदेश 27 के उद्देश्य के लिए विधिवत नियुक्त सरकारी वकील तब तक बने रहेंगे जब तक कि उक्त अधिसूचना में संशोधन नहीं किया जाता।इस प्रकार, संहिता के आदेश 27 के उद्देश्य से केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन द्वारा नियुक्त एक सरकारी वकील भारत संघ की ओर से अपील करने के लिए सक्षम है।(पैरा 6)।

यह मानते हुए कि संहिता के आदेश 27 के प्रयोजनों के लिए सरकारी वकीलों की नियुक्ति करने वाली अधिसूचना निश्चित रूप से विधायी है क्योंकि इसे सरकार द्वारा विधानमंडल के प्रतिनिधि के रूप में घोषित किया गया है, संहिता के आदेश 27 के नियम 8-बी ने 'सरकारी वकील' अभिव्यक्ति को परिभाषित करने का प्रयास किया है।विधानमंडल ने इस अभिव्यक्ति को परिभाषित करने के बजाय, इस शक्ति को सरकार को स्पष्ट रूप से यह परिकल्पना करते हुए सौंप दिया है कि आदेश 27 के उद्देश्य के लिए एक 'सरकारी वकील' का अर्थ एक 'वकील' है, जिसे सरकार सामान्य या विशेष आदेश द्वारा नियुक्त करती है।इसलिए, सरकार ने विधानमंडल के प्रतिनिधि के रूप में आदेश पारित किया और इसलिए, आदेश चरित्र में विधायी है और चरित्र में कार्यकारी नहीं है।

(पैरा 9)।

अभिनिर्धारित किया गया कि 'शपथ-पत्र' पद मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 33 के अग्रभाग में आता है, अर्थात जब न्यायालय को यह आदेश दिया जाता है कि उसके समक्ष उठाए गए प्रश्न का निर्णय कैसे किया जाए और उसमें क्या प्रावधान है कि न्यायालय शपथ-पत्रों पर प्रश्नों का निर्णय करेगा।इसका मतलब है कि अदालत के समक्ष उठाई गई आपत्तियों से उत्पन्न होने वाले मुद्दों पर, पहली बार में, पक्षों के हलफनामों पर निर्णय लिया जा सकता है।इसका मतलब यह नहीं है कि आपत्तियाँ! शपथ-पत्रों के साथ होनी थी।विवेकाधिकार अदालत के पास इस निर्णय को ध्यान में रखते हुए है कि क्या वह केवल हलफनामों पर उठाए गए प्रश्नों का निपटारा करना चाहेगा।यदि वह ऐसा करता है, तो वह पक्षों के शपथ पत्र के रूप में साक्ष्य की मांग कर सकता है।(पैरा **28**)।

माना जाता है कि निर्णय के संबंध में मौजूदा शब्दों 'अंतिम और बाध्यकारी' में 'निर्णायक' शब्द को जोड़ने से निर्णय के अधिकार में बिल्कुल भी वृद्धि नहीं हुई थी।'निर्णायक' शब्द को जोड़े बिना भी पक्षकारों के लिए निर्णय की बाध्यकारी प्रकृति थी
एक ही।यदि 'निर्णायक') शब्द को जोड़कर प्राप्त करने का उद्देश्य यह था कि मध्यस्थता अधिनियम में उल्लिखित किसी भी आधार पर निर्णय को निर्विवाद बनाया जाना था, तो पक्ष अपने प्रयास में अकेले विफल रहे।यह उद्देश्य केवल तभी प्राप्त किया जा सकता था जब 'मध्यस्थता अधिनियम में या अन्यथा उल्लिखित किसी भी आधार पर किसी भी पक्ष द्वारा निर्णय पर महाभियोग नहीं चलाया जाएगा' शब्द दिए गए हों।
मध्यस्थता खंड में जोड़ा गया लेकिन तब भी निर्णय को अलग रखा जा सकता था यदि यह स्थापित किया गया होता कि अनुबंध स्वयं का है।जिस प्रकार का मध्यस्थता खंड सुझाया गया था, वह यह था कि आज्ञाकारी पक्ष को या तो उस अनुबंध में प्रवेश करने के लिए प्रेरित किया गया था या उस अनुबंध में प्रवेश करने के लिए मजबूर किया गया था या उस अनुबंध में प्रवेश करने के लिए उस पर अनुचित प्रभाव डाला गया था (पैरा 32)।

अभिनिर्धारित किया गया कि यदि किसी पक्ष को अपने दावे के समर्थन में या किसी दावेदार के खिलाफ बचाव के माध्यम से अनुबंध का उल्लेख करना है या उसका सहारा लेना है, तो ऐसा विवाद अनुबंध के तहत एक विवाद है।क्या दावा सीमा द्वारा वर्जित है, किसी को पक्षों के बीच समझौते के प्रासंगिक खंडों पर गौर करना होगा।पुनः, यह पता लगाने के लिए कि क्या दावेदार को किसी दी गई

राशि या किसी राशि का दावा करने से रोक दिया गया था, किसी को फिर से विचाराधीन अनुबंध के खंडों का उल्लेख करना होगा।परिसीमन के अनुरोध या निरोध के अनुरोध से संबंधित ऐसा विवाद अनिवार्य रूप से समझौते से उत्पन्न होता है या उससे संबंधित होता है और इसलिए, मध्यस्थ के अधिकार क्षेत्र में होता है।

(पारस 39 और 40)।

माना गया कि एक मध्यस्थ मौखिक फैसला देने के लिए बाध्य नहीं है।यहां तक कि जहां अधिनिर्णय में सीमा का कोई विशिष्ट संदर्भ नहीं दिया गया है, मध्यस्थ को राशि प्रदान करके सीमा के अनुरोध को अस्वीकार करने के निहितार्थ से लिया जाना चाहिए।(पैरा 50)।

श्री एन. के. बंसल, पी. सी. एस., उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, चंडीगढ़, दिनांक *31* अक्टूबर, *1979* के न्यायालय के आदेश से पहली अपील; श्री वाई. एल. सुब्रमण्यम, एस. ई. द्वारा *14* दिसंबर, *1977* को दी गई याचिका और निर्णय को खारिज करते हुए, न्यायालय का एक नियम बनाया गया और उन्हें डिक्री की तारीख से भुगतान की तारीख तक *6* प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से भविष्य में ब्याज का अधिकार दिया गया और पक्षों को अपने स्वयं के खर्च वहन करने के लिए छोड़ दिया गया।

सिविल माइस।*1980* का सं. *1172*-सी. आई. आई.

धारा *151* सी. पी. सी. के तहत याचिका यह प्रार्थना करती है कि यह माननीय न्यायालय प्रतिवादी (आवेदक) की प्रारंभिक आपत्तियों पर विचार करने और न्यायाधीश के हित में प्रारंभिक आपत्तियों के आधार पर अपील को ख़ारिज किया जाए.

1980 का प्रति-आपति नंबर 16-सीएच।

आदेश *41,* नागरिक अधिकार संहिता के नियम बी. बी. के तहत प्रति-आपत्ति यह प्रार्थना करते हुए कि यह माननीय उच्च न्यायालय इन प्रति-आपत्तियों को प्रतिग्रहण करना करने और आपत्ति-याचिकाकर्ता के पक्ष में और अपीलकर्ता के खिलाफ इन प्रति-आपत्तियों की लागत के साथ निर्णय दिया जाए

आर. के. छिब्बर, सरकारी वकील , केंद्र शासित प्रदेश,चंडीगढ़, अपीलकर्ता की ओर से।

बलबीर सिंह तुली, व्यक्तिगत रूप से।

■ प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता के. सी. पुरी।

न्याय

डी. एस. तेवतिया, जे.

टी 'ईः' आर टी• ‘ ‘ ---,<,..; ---

(1) अपीलकर्ता भारत संघ ने अधीनस्थ न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, चंडीगढ़ के 31 अक्टूबर, 1979 के आदेश को रद्द करने की मांग की है, जिसके तहत उन्होंने 14 दिसंबर, 1977 को श्री वाई. एल. सुब्रमण्यम, अधीक्षक अभियंता, न्यायालय शासन द्वारा दिया गया फैसला दिया था और भारत संघ की आपत्तियों को खारिज कर दिया था।

(2) उक्त आदेश और विचाराधीन निर्णय के खिलाफ हमले के आधारों ध्यान दें देने से पहले, हमें वर्तमान अपील की स्थिरता के लिए प्रतिवादी की ओर से उठाई गई प्रारंभिक आपत्तियों पर ध्यान देना होगा।

(3) सबसे पहले!हमारे समक्ष दायर की गई अपील की स्थिरता पर आपत्ति यह है कि श्री आर. के. छिब्बर, अधिवक्ता, जिन्होंने भारत संघ की ओर से अपील प्रस्तुत की है, ऐसा करने के लिए सक्षम नहीं थे, क्योंकि वे इस संबंध में विधिवत अधिकृत नहीं थे।यह कहा गया है कि श्री आर. के. छिब्बर को कानूनी सलाहकार , केंद्र शासित प्रदेश, चंडीगढ़ द्वारा अपील दायर करने के लिए अधिकृत किया गया था, जिनके पास स्वयं ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं था, यह मामला केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन से संबंधित नहीं था, बल्कि भारत सरकार के रक्षा विभाग से संबंधित था, जो केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन से अलग एक इकाई थी।

(4) अपील कर्ता के आदरणीय वकील श्री छिब्बर इस प्रस्ताव पर विवाद नहीं करते की केंद्र शासित प्रदेश केंद्र सरकार या उसके किसी भी विभाग से अलग है हालाँकि, उनका तर्क है कि उन्हें अपील प्रस्तुत करने के लिए विधिवत अधिकृत किया गया है।इस संबंध में वे सरकारी राजपत्र में दिनांक 3 दिसंबर, 1960 को प्रकाशित जी. एस. आर. सं. 1412, दिनांक 25 नवंबर, 1960 और पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 की धारा 32 और 88 पर भरोसा करते हैं।उपरोक्त जी. एस. आर. का प्रासंगिक भाग निम्नलिखित शब्दों में है:

> "जीएसआर 1412।—सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की पहली अनुसूची के आदेश XXVII के नियम 8B के खंड (ए) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए और भारत सरकार की अधिसूचना के स्थान पर विधि मंत्रालय सं. एस. आर. ओ. 3920, दिनांक 5 दिसंबर, 1957, केंद्र सरकार एतद्द्वारा यहाँ संलग्न अनुसूची के दूसरे कॉलम में निर्दिष्ट व्यक्ति को उक्त आदेश के प्रयोजनों के लिए सरकारी वकील के रूप में नियुक्त करती है।केंद्र सरकार द्वारा या उसके विरुद्ध किसी मुकदमा के लिए, जो मुकदमा नहीं है (सिटी सिविल कोर्ट, कलकत्ता में मुकदमा के अलावा) -
>
> 1.
> से '*
> 13. .....
>
> या केंद्र सरकार की सेवा में किसी लोक अधिकारी के खिलाफ। उक्त अनुसूची के पहले कॉलम में निर्दिष्ट किसी भी न्यायालय में।
>
> अनुसूची
>
> न्यायालय (1) अधिकारी (2)
>
> (a) चंडीगढ़ में उच्च न्यायालय।(i) महाधिवक्ता, पंजाब,
> ((ii) सरकारी प्लीडर, पंजाब।
> (b) .....
>
> एससीडी/।/-
> आर. एस. गे,
> जे. टी. सिकरी।"

पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 की धारा 32 और 88 इस प्रकार हैं:—

> "32. इस भाग के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, पंजाब के उच्च न्यायालय में अभ्यास और प्रक्रिया के संबंध में नियत दिन से तुरंत पहले लागू कानून, आवश्यक संशोधनों के साथ, सामान्य उच्च न्यायालय के संबंध में लागू होगा।
>
> 4 सी * * *
>
> 88. भाग-2 के उपबंधों से यह नहीं समझा जाएगा कि उन्होंने उन राज्यक्षेत्रों में कोई परिवर्तन किया है जिन पर नियत दिन से ठीक पहले प्रवृत्त कोई विधि विस्तारित होती है या लागू होती है और पंजाब राज्य के लिए ऐसी किसी विधि में क्षेत्रीय निर्देश, जब तक कि किसी सक्षम विधानमंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा अन्यथा उपबंधित नहीं किए जाते हैं, तब तक नियत दिन से ठीक पहले उस राज्य के भीतर के राज्यक्षेत्र

माने जाएंगे।"

श्री छिब्बर द्वारा यह तर्क दिया गया है कि ऊपर उल्लिखित अधिसूचना जिसके द्वारा पंजाब सरकार के वकीलों को भारत सरकार द्वारा आदेश 27, सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रयोजनों के लिए नियुक्त किया गया था, पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 की धारा 32 और 88 के उद्देश्य के लिए एक कानून था, जिसे इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित किया गया था। वह प्रस्तुत करता है कि उसे केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ का सरकारी वकील नियुक्त किया गया था।उनके द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अपील और अभिवचनों की प्रस्तुति।यह उच्च न्यायालय के व्यवहार और प्रक्रिया से संबंधित है।आदेश 27, नियम 2, सिविल प्रक्रिया संहिता में यह प्रावधान है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत सरकार की ओर से कौन उपस्थित हो सकता है, कार्य कर सकता है और आवेदन कर सकता है।पुनर्गठन अधिनियम की खंड 32 में परिकल्पना की गई है कि पंजाब उच्च न्यायालय की प्रथा और प्रक्रिया से संबंधित कानून जो नियत दिन, यानी 1 नवंबर, 1966 से तुरंत पहले लागू था, पंजाब और हरियाणा के सामान्य उच्च न्यायालय के संबंध में लागू होता रहेगा।आदेश 27 के नियम 8 बी का खंड (ए), जो निम्नलिखित शब्दों में है, 'सरकारी वकील' अभिव्यक्ति को उस व्यक्ति के रूप में परिभाषित करता है जिसे आदेश 27, सिविल प्रक्रिया संहिता के उद्देश्यों के लिए सामान्य या विशेष आदेश द्वारा नियुक्त किया जाता हैःएफ.

> "8-बी. इस आदेश में जब तक कि अन्यथा स्पष्ट रूप से 'सरकार' और 'सरकारी वकील' का अर्थ सम्मानपूर्वक नहीं दिया जाता है -
>
> (क> केंद्र सरकार द्वारा या उसके विरुद्ध या की सेवा में किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध किसी मुकदमा के संबंध में
>
> कि सरकार, केंद्र सरकार और उस सरकार के रूप में ऐसा वकील इस आदेश के प्रयोजनों के लिए आम तौर पर या विशेष रूप से नियुक्त कर सकता है;
>
> * * * * * *

(5) 25 नवंबर को अन्य बातों के साथ साथ अधिसूचना के अनुसार, पंजाब सरकार के सभी वकीलों को आदेश 27, नियम *2,* सिविल प्रक्रिया संहिता के उद्देश्य से केंद्र सरकार के लिए कार्य करने के लिए नियुक्त किया गया था।इस अधिसूचना को पुनर्गठन अधिनियम की खंड 32 के उद्देश्य के लिए कानून का दर्जा दिया गया है।

(6) कि पुनर्गठन अधिनियम की खंड 88 के आधार पर, उपरोक्त अधिसूचना जो मौजूदा कानून का दर्जा रखती है, उस क्षेत्र के लिए अच्छी बनी रहेगी जो पुनर्गठन अधिनियम के भाग II के प्रावधानों के बावजूद पूर्ववर्ती पंजाब राज्य का हिस्सा था, जिसमें मौजूदा पंजाब राज्य के क्षेत्र को हरियाणा राज्य, केंद्र शासित प्रदेश/चंडीगढ़, आंशिक रूप से हिमाचल प्रदेश और शेष को पंजाब राज्य में विभाजित करने की परिकल्पना की गई है।इसका मतलब है कि उक्त अधिसूचना के उद्देश्य के लिए केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन या हरियाणा राज्य या नए पंजाब राज्य या हिमाचल प्रदेश के सरकारी वकील के तहत सरकारी वकील, जो पहले पूर्ववर्ती पंजाब राज्य का हिस्सा थे, आदेश 27, सिविल प्रक्रिया संहिता के उद्देश्य के लिए विधिवत नियुक्त सरकारी वकील बने रहेंगे, जब तक कि उक्त अधिसूचना को संशोधित नहीं किया जाना था, जिसे किसी के मामले में संशोधित नहीं किया गया है।

(7) श्री छिब्बर ने आगे तर्क दिया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 56 और 57 (1) के प्रावधानों के आधार पर, न्यायालय को 3 दिसंबर, 1960 के सरकारी राजपत्र में प्रकाशित 25 नवंबर, 1960 के जी. एस. आर. 1412 का न्यायिक सुचना को लेना होगा, साथ ही 20 मई, 1978 की अधिसूचना संख्या 1560-आई. डी.-77/1614 भी लेनी होगी, जिसमें उन्हें सरकारी वकील,

चंडीगढ़ के रूप में नियुक्त किया गया है।8

(8) प्रतिवादी की ओर से मुख्त्यारे खास रखने वाले श्री बलबीर सिंह तुली ने हालांकि तर्क दिया है कि विचाराधीन अधिसूचना में कानून का बल नहीं है, क्योंकि केवल-ऐसी अधिसूचनाएं, जो विधायी हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे कानून के बल वाली हैं और जिनमें से 1 जुलाई को न्यायिक नोटिस अदालतों द्वारा लिया जा सकता है और उनके प्रस्तुत करने के समर्थन में, वे इस पर भरोसा करते हैं -

एक पूर्ण पीठ, राज्य बनाम गोपाल सिंह (1) में मध्य भारत उच्च न्यायालय का निर्णय, और एडवर्ड मिल्स कंपनी लिमिटेड, ब्यावर और अन्य बनाम अजमेर राज्य और अन्य *(2)* में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय।

(9) इस प्रश्न में जाना अनावश्यक है कि क्या यह अकेले एक विधायी आदेश है जो सरकारी राजपत्र में प्रकाशित होने पर कानून का बल रखता है और न्यायालय द्वारा न्यायिक नोटिस लिया जा सकता है, क्योंकि विचाराधीन अधिसूचनाएं निश्चित रूप से विधायी प्रकृति की हैं क्योंकि इन्हें सरकार द्वारा विधानमंडल के प्रतिनिधि के रूप में घोषित किया गया था।आदेश 27, सिविल (प्रक्रिया संहिता) के नियम 8 बी ने 'सरकारी वकील' अभिव्यक्ति को परिभाषित करने की मांग की है।इस अभिव्यक्ति को परिभाषित करने के बजाय, विधानमंडल ने स्पष्ट रूप से यह परिकल्पना करते हुए सरकार को यह शक्ति सौंप दी है कि आदेश, 27 के उद्देश्य के लिए एक 'सरकारी वकील' का अर्थ एक 'वकील' है, जिसे सरकार सामान्य या विशेष आदेश द्वारा नियुक्त करती है।इसलिए सरकार ने विधानमंडल के प्रतिनिधि के रूप में आदेश पारित किया और इसलिए आदेश विधायी है और कार्यकारी नहीं है।

(10) श्री बलबीर सिंह ने तब तर्क दिया कि श्री छिब्बर अपील का ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने के लिए सक्षम नहीं थे।उन्होंने जोर देकर कहा कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2 की उप-धारा (7) में दी गई 'सरकारी वकील'' की परिभाषा के आधार पर, 'सरकारी वकील'' राज्य सरकार द्वारा सरकारी वकील' पर सामान्य नियमाववाली सुची द्वारा स्पष्ट रूप से लगाए गए किसी भी कार्य को करने के लिए नियुक्त एक अधिकारी है और सिविल प्रक्रिया संहिता स्पष्ट रूप से एक सरकारी वकील' द्वारा किए जाने वाले केवल एक कार्य का प्रावधान करती है और जो किसी भी न्यायालय द्वारा जारी किए गए आदेश 27, सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम 4 में केवल सरकार के खिलाफ प्रक्रियाओं को प्राप्त करने का प्रावधान है।उनके अनुसार) श्री छिब्बर सरकारी वकील होने के कारण अपील करने में सक्षम नहीं थे।

(11) इस तर्क में भी कोई दम नहीं है।श्री छिब्बर ने इस तथ्य के आधार पर अपील को प्राथमिकता दी कि उन्हें अधिसूचना संख्या 27 द्वारा सामान्य नियमाववाली सुची के आदेश 27 के उद्देश्य से एक सरकारी वकील नियुक्त किया गया था। जी. एस. आर. 1412, दिनांक 25 नवंबर, 1960 और यह केवल उनके सरकारी वकील होने के कारण नहीं था कि उन्होंने अपील प्रस्तुत की। उन्होंने अपने इस तथ्य के कारण ऐसा किया कि

(1) ए. आई. आर. 1956 मध्य भारत 138.
(2) ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 25.

आई।

आदेश 27 सामान्य नियमाववाली सुची के प्रयोजन के लिए एक सरकारी वकील नियुक्त किया गया है, जिसमें नियम 2। इसके दायरे में शामिल है।

(12) तथापि, श्री बलबीर सिंह द्वारा यह आग्रह किया गया कि सरकार ने एक अलग अधिसूचना सं. एस. आर. ओ. 35, दिनांक 25 जनवरी, 1958, जिसके तहत सरकारी वकीलों के अलावा अन्य व्यक्तियों को आदेश 27, सामान्य नियमाववाली सुची के नियम 1 और 2 के उद्देश्य से नामित किया गया था, यह माना जाना चाहिए कि जी. एस. आर. 1412, दिनांक 25 नवंबर, 1960 द्वारा नियुक्त सरकारी वकील को आदेश 27, सामान्य नियमाववाली सुची के नियम 2 के संदर्भ में केंद्र सरकार की ओर से कार्य करने से बाहर रखा गया था, और इसलिए, श्री छिब्बर अपील का ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने और इसे इस न्यायालय में पेश करने के लिए सक्षम नहीं थे।

(13) इस तर्क में भी कोई दम नहीं है।आदेश 27, सामान्य नियमाववाली सुची के नियम 1 और 2 के संदर्भ में सरकारी वकील के अलावा कुछ व्यक्तियों को सरकार के लिए कार्य करने के लिए नामित किया जाना, आदेश 27 के उद्देश्य से सरकार द्वारा नियुक्त सरकारी वकील को बाहर नहीं करेगा, जो इसके दायरे नियम 2 में भी शामिल है।आदेश 27, सामान्य नियमाववाली सुची के नियम 1 और 2 के प्रयोजन के लिए सरकारी वकील के अलावा कुछ व्यक्तियों को नामित करने के लिए एक अधिसूचना होनी चाहिए, जैसा कि सरकारी वकील नहीं कर सकता था।हमेशा एक ऐसा व्यक्ति हो जो मामले के तथ्यों से परिचित हो सकता है और एक शिकायत या लिखित बयान या उस मामले के लिए किसी भी आवेदन को सत्यापित करने में समर्थ हो सकता है जिसमें उसमें बताए गए तथ्यों के सत्यापन की आवश्यकता होती है और इसलिए, आदेश 27, सामान्य नियमाववाली सुची के नियम 1 और 2 के उद्देश्य से सरकारी वकील के अलावा अन्य व्यक्तियों को नामित करने के लिए एक विशेष अधिसूचना की आवश्यकता है। यह देखा जा सकता है कि अपील का ज्ञापन को सत्यापन की आवश्यकता नहीं है, इसलिए एक सरकारी वकील उसी पर हस्ताक्षर करने और अदालत के समक्ष पेश करने में समर्थ होगा।

(14) मामला समाकलन का नहीं है।ई. आई. आर. एल. में लाहौर उच्च न्यायालय के समक्ष एक सरकारी अधिवक्ता द्वारा अपील की प्रस्तुति पर लगभग एक समान आपत्ति उठाई गई थी। कं., कलकत्ता बनाम पियारा लाई सोहन लाई *I (3)*।उस न्यायालय ने 25 नवंबर, 1960 की जी. एस. आर. 1412 के रूप में हमारे पास जो अधिसूचना है, उस पर भरोसा करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि सरकारी अधिवक्ता नियम *2* आदेश 27, सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत पूरे प्रांत के लिए एक पदेन सरकारी वकील होने के नाते और सरकार के कार्य करने के लिए अधिकृत है उनके मान्यता प्रापत एजेंट बिना मुख्तियार नामा अपील करने में सक्षम थे ।

(3) ए. आई. आर. 1928 लाहौर 774.~

(15) सरकारी अधिसूचना के आधार पर ही अपील दायर करने के लिए श्री छिब्बर की क्षमता को बनाए रखने के लिए, इस तथ्य पर ध्यान देना अनावश्यक है कि उन्होंने एक प्राधिकरण में मुखत्यारे खास फाइल पर रखा था, जिसके बारे में श्री छिब्बर दावा करते हैं कि वह इसे निष्पादित करने के लिए सक्षम था और श्री बलबीर सिंह की आपत्ति, और आगे यह तर्क कि इस तरह के पोस्ट फैक्टो(कार्योत्तर) प्राधिकरण का कोई फायदा नहीं होगा।

(16) प्रतिवादी द्वारा प्रति आपति एक्शन दायर किए गए हैं और प्रति आपति में से एक जो इस स्तर पर सही तरीके से निपटाए जाने के योग्य है, नीचे दिए गए न्यायालय में प्रतिवादी द्वारा आपत्ति याचिका की स्थिरता के लिए उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति से संबंधित है:न्याय के लिए अपीलकर्ता को इस आधार पर न्यायालय का नियम बनाया जा रहा है कि याचिका को ऐसा करने के लिए सक्षम व्यक्ति द्वारा सत्यापित नहीं किया गया है और 'क' द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है!ऐसा करने के लिए सक्षम

वकील, यह नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा स्वीकार्य नहीं था।(नीचे दिए गए न्यायालय में) आपत्ति याचिका प्रस्तुत करने के लिए वकील की क्षमता को चुनौती, इस न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने के लिए अपीलार्थी वकील की क्षमता को दी गई चुनौती के समान है।

(17) श्री छिब्बर जैसे सरकारी वकील द्वारा आपत्ति-याचिका दायर की गई है, इसलिए श्री छिब्बर की क्षमता के संबंध में जो कुछ भी किया गया है और देखा गया है, वह उस सरकारी वकील के मामले में उत्परिवर्तित रूप से लागू होगा जिसने नीचे दिए गए न्यायालय में आपत्तियां दायर की थीं।

(18) जहाँ तक आपत्तियों के सत्यापन का संबंध है, श्री छिब्बर ने हमारे ध्यान में लाया है।एस. आर. ओ. संख्या 35, दिनांक 25 जनवरी, 1958, जिसके द्वारा केंद्र सरकार उन अधिकारियों को अधिकृत करती है जिनके नाम उक्त अधिसूचना के साथ संलग्न अनुसूची में उन व्यक्तियों के रूप में उल्लिखित हैं जिनके द्वारा केंद्रीय सरकार द्वारा या उसके खिलाफ सिविल अधिकार क्षेत्र के किसी भी न्यायालय में मुकदमों में दलीलें और लिखित बयान दिए जा सकते हैं और यह भी अधिसूचित किया जाता है कि ऐसे अधिकारी, जैसा कि अनुसूची में उल्लेख किया गया था, ऐसे व्यक्ति थे जो मामले के तथ्यों से परिचित थे और ऐसे आधार और लिखित बयानों का सत्यापन कर सकते थे।गैरीसन इंजीनियर ऐसे व्यक्तियों में से एक है, जिसका नाम उक्त अधिसूचना से जुड़ी अनुसूची में उल्लिखित है। गैरीसन इंजीनियर ने आपत्ति-याचिका को सत्यापित किया था।इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि सक्षम व्यक्ति ने आपत्ति याचिका को सत्यापित किया था और एक सक्षम व्यक्ति ने इसे नीचे दी गई अदालत के समक्ष प्रस्तुत किया था।

(19) श्री बलबीर सिंह ने तब तर्क दिया कि अपील दायर करने से पहले किसी सक्षम प्राधिकारी को निर्णय लेना चाहिए था कि अपील दायर की जाए।श्री बलबीर सिंह के अनुसार, रक्षा सेवा विनियम, 1962 के पैरा 537 (ए) को ध्यान में रखते हुए, जी. ओ. सी., पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश क्षेत्र इस बारे में निर्णय लेने के लिए सक्षम प्राधिकारी हैं कि अपील (दायर की जानी थी या नहीं।

(20) श्री छिब्बर ने जवाब में आग्रह किया कि इस मामले में सक्षम प्राधिकारी द्वारा अपील दायर करने से पहले अपील दायर करने का निर्णय लिया गया था और मुख्य अभियंता, कार्य कारी अभियंता और विधि परामर्शी , केंद्र शासित प्रदेश, चंडीगढ़ के बीच हुए पत्राचार की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया, जिसके संदर्भ में बलबीर सिंह द्वारा आपत्ति नहीं की गई है।मुख्य अभियंता ने 12 जनवरी, 1980 को कार्य कारी अभियंता को निम्नलिखित पत्र ('ए' चिह्नित और रिकॉर्ड पर रखा गया) संबोधित किया जिसमें उनसे कानूनी सलाहकार की कानूनी राय प्राप्त करने और उनके (कानूनी सलाहकार) द्वारा सलाह के अनुसार आवश्यक कार्रवाई करने का अनुरोध किया गया था:

> (1) "संदर्भ जी. ई. चंडीगढ़ पत्र सं. 8061/530 E8, दिनांक 2 जनवरी, 1980 और 8061/529 E8, दिनांक 2 जनवरी, 1980।
>
> (2) कानून मंत्रालय की सलाह केवल उन मामलों में ली जानी चाहिए जहां मध्यस्थों ने वित्तीय कठोरता के कारण कार्यों के निलंबन के परिणामस्वरूप अनुबंध अवधि के विस्तार के संबंध में ठेकेदारों के दावों को बरकरार रखा है।वर्तमान मामले में, आपसे अनुरोध किया जाता है कि आप कानूनी सलाहकार के साथ व्यक्तिगत संपर्क द्वारा 'प्राथमिकता' के आधार पर निर्णय की प्रति और कानूनी सलाहकार की कानूनी राय प्राप्त करें और कानूनी सलाहकार की सलाह के अनुसार आवश्यक कार्रवाई करें।"

यहां यह कहा जा सकता है कि कार्य कारी अभियंता ने उपरोक्त मांग की प्रत्याशा में पहले ही कानूनी अनुस्मारक को स्थानांतरित कर दिया था-अपने पत्र संख्या 8463/ए. एफ.-23/ए. आर. बी./322/ई 8, दिनांक 15 दिसंबर, 1979 के माध्यम से, अपनी कानूनी राय देने के लिए ('बी' चिह्नित और रिकॉर्ड पर रखी गई प्रति) और कानूनी सलाहकार अपने ज्ञापन संख्या 3992-ए. आई.-80/132, दिनांक 11 जनवरी, 1986 द्वारा ('सी' चिह्नित और रिकॉर्ड पर रखी गई प्रति) श्री आर. के. छिब्बर से अनुरोध किया था कि वे विचाराधीन फैसले के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील दायर करें और तब उनके द्वारा 18 फरवरी, 1980 को अपील दायर की गई थी।

मा

(21) दोनों पक्षों ने अनुबंध I.A.F.W. 2249 में प्रवेश किया था।उक्त अनुबंध के खंड 1 का उपखंड (च) अनुबंध के उद्देश्य के लिए 'सरकार' अभिव्यक्ति को इस प्रकार परिभाषित करता है -

> (च) 'सरकार' से तात्पर्य है कि भारत का राष्ट्रपति, पद पर और नियुक्त उसके उत्तराधिकारी और मुख्य अभियंता और उप मुख्य अभियंता (यदि विशेष रूप से मुख्य अभियंता द्वारा अधिकृत हैं) राष्ट्रपति की ओर से उनमें से किसी एक द्वारा किए गए अनुबंधों के संबंध में समान शक्तियों का प्रयोग करेंगे और इस अनुबंध में अन्यथा प्रदान किए गए विषय के अधीन, दिए जाने वाले सभी नोटिस और ऐसे अनुबंधों के संबंध में सरकार की ओर से किए जाने वाले सभी कार्य मुख्य अभियंता या उप मुख्य अभियंता द्वारा दिए या किए जा सकते हैं।या तो ।"

इस उपखंड के अवलोकन से पता चलेगा कि मुख्य अभियंता को उन नोटिसों के संबंध में सरकार की शक्ति का प्रयोग करना था जो दिए जाने थे और जो संबंधित अनुबंध के संबंध में सरकार की ओर से की जानी थीं।पहले से उल्लिखित पत्राचार के साथ मुख्य अभियंता की शक्तियों को देखते हुए, यह स्पष्ट हो जाता है कि सक्षम प्राधिकारी के रूप में मुख्य अभियंता ने मामले में अपील दायर करने का निर्णय लिया था, जिसमें उन्होंने कार्य कारी अभियंता कानूनी सलाहकार से परामर्श करने और मामलों में सभी कार्रवाई करने की सलाह दी थी और बाद वाले ने कानूनी सलाहकार की राय मांगी थी, जिन्होंने निर्णय लिया था कि अपील दायर की जानी चाहिए और तदनुसार सरकारी वकील श्री आर. के. छिब्बर को अपील दायर करने की सलाह दी थी।

(22) हम श्री बलबीर सिंह से सहमत नहीं हैं कि जी. ओ. सी. पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश क्षेत्र अकेले यह तय करने में सक्षम थे कि अपील दायर की जानी थी या नहीं।ऊपर बताए गए पैरा 537 (ए) में केवल लेखा परीक्षा और लेखा आदि के उद्देश्य से विभाग का आंतरिक कार्य शामिल था। पक्षों के बीच समझौते के तहत प्राधिकरण,जो अकेले यह तय करने के लिए सक्षम था कि अपील आदि के माध्यम से कोई कार्रवाई की जानी थी या नहीं, मुख्य अभियंता था, जो स्वीकार करने वाला अधिकारी भी था।

(23) श्री बलबीर सिंह द्वारा ली गई अगली प्रारंभिक आपत्ति यह है कि (न्यायालय के समक्ष आपत्ति याचिका में निर्णय को रद्द करने के लिए जो आधार लिए गए थे, वे ऐसे थे जो

मध्यस्थता अधिनियम की धारा 15 और 16 के संदर्भ में अधिनिर्णय का संशोधन या उसे प्रेषित करना शामिल है और नीचे दिए गए न्यायालय के आदेश को निर्णय को संशोधित करने से इनकार करने या उसे माफ़ करने से इनकार करने के रूप में माना जाना चाहिए और ऐसा कोई आदेश मध्यस्थता अधिनियम की धारा 39 के तहत अपील योग्य नहीं है, जिसके तहत केवल निम्नलिखित आदेश अपील योग्य हैं:

"एक आदेश -

(i) मध्यस्थता का स्थान लेना;

(ii) एक विशेष मामले के रूप में बताए गए निर्णय पर;

(iii) किसी निर्णय को संशोधित या सही करना;

(iv) मध्यस्थता समझौता दायर करना या करने से इनकार करना;

(v) जहां मध्यस्थता समझौता है वहां कानूनी कार्यवाही पर रोक लगाना या रोकने से इनकार करना

(vi) किसी फैसला को रद्द करना या रद्द करने से इंकार करना

अपीलकर्ता के वकील श्री छिब्बर ने एक बयान दिया कि वह अपील में अपनी चुनौती को दावा सं. I और दावा संख्या 2।

(24) उत्तरदाताओं ने 5 जुलाई, 1974 को अपनी दावा याचिका दायर की थी, जिसमें उन्होंने अपने दावे का संक्षिप्त संकेत दिया था।12/20 सितंबर, 1975 की एक बाद की याचिका में, उन्होंने केवल इसे बढ़ाया।इसलिए केवल पहली दावा याचिका में इंगित दावा संख्या 1 और दावा संख्या 2 पर ध्यान देने की आवश्यकता है जो निम्नलिखित शर्तों में हैं:

"दावा संख्या 1:

विभागीय देरी और काम के निष्पादन में बहुत अधिक समय और लागत लगने के कारण हुई हानि का मुआवजा का दावा .

दावा की गई राशिःअनुबंध राशि पर अतिरिक्त 15 प्रतिशत प्रीमियम।

(1) सरकार समय पर स्थल उपलब्ध कराने में विफल रही।

(2) सरकार समय पर काम और विचलन के आदेश देने में विफल रही।

(3) सरकार समय पर चित्र और विवरण प्रदान करने में विफल रही।

(4) सरकार समय पर निर्णय और निर्देश देने में विफल रही।

(5) सरकार समय पर गोदाम उपलब्ध कराने में विफल रही।

(6) सरकार चौबीसों घंटे काम करने की सुविधा के लिए एम. ई. एस. पर्यवेक्षी कर्मचारी प्रदान करने में विफल रही।

(7) सरकार समय पर विस्तार देने और आर. ए. आर. एस. और अंतिम बिल का देय उचित ओर समय पर भुगतान करने में विफल रही।आगे का विवरण सुनवाई से पहले या उसके दौरान अधिक दिया जाएगा

दावा संख्या 2:

आई. ए. एफ. डब्ल्यू.-2249 की शर्त 63 के तहत देय ईंटों और अन्य वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि के लिए मुआवजे का दावा।

आक्षेपकर्ता-अपीलार्थी ने 26 दिसंबर, 1975 के अपने उत्तर में दावा संख्या 1 और 2 पर प्रारंभिक आपत्ति जताई, जो निम्नलिखित शर्तों में हैः—

(8) अनुबंध के तहत काम 15 नवंबर, 1964 को पूरा किया गया था, जिस तारीख को अनुबंध के तहत ठेकेदार को देय राशि उसे देय हो गई थी।सीमा अधिनियम (1963 का अधिनियम 36) के तहत प्रावधान के अनुसार अनुबंध के तहत कोई भी दावा ठेकेदार द्वारा उस तारीख से तीन साल के भीतर, यानी 14 नवंबर, 1967 से पहले किया जाना चाहिए था।कानून के तहत प्रदान की गई सीमा अवधि समाप्त होने के लगभग 8 साल बाद दावा डाला गया है।निर्दिष्ट सीमा अधिनियम की खंड 3 के अनुसार सभी दावे समय-बाधित हो गए हैं और इस तरह के समय-बाधित दावों पर विचार करना किसी भी अदालत, विशेष रूप से मध्यस्थ न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर है।इसलिए, विद्वान मध्यस्थ से अनुरोध किया जाता है कि वह दावेदार द्वारा अपने निषिद्ध दावों के अपने बयान में रखे गए सभी दावों को अस्वीकार कर दे,जो समय बाद्वित है जो कानून दवारा स्पश्ट रूप से निषद है .2

(2) ठेकेदार ने स्पष्ट संख्या के साथ अंतिम बिल पर हस्ताक्षर किए हैं और उसे स्वीकार कर लिया है। दावा प्रमाणपत्र में कहा गया है कि बिल की शुद्ध राशि के अलावा अनुबंध के तहत उनका कोई और दावा नहीं है।; इसलिए, ठेकेदार को कानून से छूट दी गई

उसी अनुबंध के तहत किए गए कार्यों के लिए अब कोई भी दावा करना।इस तरह के दावे आई. ए. एफ. डब्ल्यू-2249 की शर्त 65 के तहत स्पष्ट रूप से निषिद्ध हैं।

इसके बाद प्रस्तुत किया गया बचाव का वस्तु-वार बयान (उपरोक्त रुख के प्रति पूर्वाग्रह) के बिना है।प्रतिवादी उपरोक्त स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना सुनवाई के दौरान मध्यस्थ के समक्ष उपस्थित होगा।

दावा नंबर *1:*

प्रतिवादी की ओर से प्रदर्शन के किसी भी उलंघन के आरोपों से इनकार किया जाता है। आरोप भी अस्पष्ट हैं।यह सामान्य ज्ञान है कि एक ठेकेदार पहले दिन से ही सभी स्थलों पर काम शुरू नहीं करता है और निश्चित रूप से पहले दिन से ही सभी भवनों के लिए आवश्यक सभी श्रम और सामग्री की खरीद नहीं करता है।इसलिए एक या दो छोटी इमारतों के लिए साइट सौंपने में देरी या कुछ दुकानों के मुद्दे में थोड़ी देरी, यदि कोई हो, के परिणामस्वरूप ठेकेदार को अतिरिक्त खर्च का कोई नुकसान होने का सवाल ही पैदा नहीं होता है।इस तरह की सभी कथित देरी को ठेकेदार के पत्र में शामिल किया गया है। संख्या स -5054 दिनांक 29 जुलाई 1964 में शामिल किया गया है है जिसमें ठेकेदार ने ऐसी सभी देरी के कारण दो महीने के लिए समय बढ़ाने का दावा किया है।यह अनुरोध प्रतिवादी द्वारा दिया गया था और दो महीने के लिए समय का विस्तार किया गया था, यानी पूरा होने की वास्तविक तारीख तक और संबंधित दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर किए गए हैं और वित्तीय प्रभाव को शून्य बताते हुए स्वीकार किया गया है।इसलिए, यह ध्यान रखना उचित है कि ठेकेदार ने अपने उक्त पत्र में इस तरह की देरी के परिणामस्वरूप उसे हुए किसी भी नुकसान या क्षति का ध्यान दें नहीं किया है।अनुबंध की शर्तों में इस तरह की देरी के परिणामस्वरूप समय के उचित विस्तार के अलावा किसी भी मुआवजे का प्रावधान नहीं है।यह स्पष्ट है-आईएएफडब्ल्यू-2249 की शर्त 11 (सी) के अनुसार।

दावा संख्या 2:

आई. ए. एफ. डब्ल्यू.-2249 (अनुबंध की सामान्य शर्तें) की शर्त 63 उन सामग्रियों की कीमतों के समायोजन का प्रावधान करती है जो वास्तव में विधानमंडल के अधिनियम (बिक्री कर के अलावा) के कारण साबित हुई हैं और न कि किसी भी कारण से कीमतों में वृद्धि के लिए।

अन्य और कारण।इस आशय के सबुत देने का दायित्व कि कीमतों में वृद्धि वास्तव में इस प्रभाव के कारण हुई थी कि उसने वास्तव में खर्च में वृद्धि का दावा किया है, ठेकेदार पर निहित है और यह दावा अनुबंध की उक्त शर्त के अनुसार, स्पष्ट रूप से निर्धारित उचित समय के भीतर किया जाना चाहिए।

सबसे पहले ठेकेदार ने 26 सितंबर, 1968 तक अनुबंध की उक्त शर्त के तहत किसी भी सामग्री के संबंध में कोई दावा नहीं किया (ठेकेदार का पत्र सं। सीएच-343/63, दिनांक 26 सितंबर, 1968, प्रदर्शनी 2) कार्य पूरा होने और सीमा अवधि समाप्त होने के लगभग चार साल बाद तक है।यहां तक कि यह पत्र केवल 'ईंटों और ईंटों की टाइलों' को संदर्भित करता है और किसी अन्य सामग्री को नहीं।22 अक्टूबर, 1964

को ठेकेदार के पत्र सं. सी-5370, दिनांक 21 अक्टूबर, 1964 ने संकेत दिया कि उसने ईंटों आदि का उपयोग किया था, जैसा कि अनुबंध में निर्दिष्ट किया गया है और उक्त पत्र आई. ए. एफ. डब्ल्यू-2249 की शर्त 63 के तहत किसी भी दावे का उल्लेख नहीं करता है।दूसरा, ठेकेदार ने कभी यह साबित नहीं किया कि कीमत में वृद्धि, यदि कोई हो, अनुबंध की शर्तों के तहत विचार किए गए विधानमंडल के अधिनियम के कारण हुई थी।तीसरा, ठेकेदार ने यह भी साबित नहीं किया है कि उसने वास्तव में कोई अतिरिक्त खर्च किया है जैसा कि दावा किया गया है।यहां तक कि दावे की राशि का उल्लेख पहली बार ठेकेदार के 12 आरएच/20 सितंबर, 1975 के दावे के बयान से किया जा रहा है।

इसलिए, ये दावे समय-बाधित होने के अलावा आधारहीन और गैर-संविदात्मक हैं।विद्वान मध्यस्थ से अनुरोध है कि वह दावे को पूरी तरह से अस्वीकार कर दे।"

प्रारंभिक आपत्ति के अवलोकन से पता चलेगा कि दोनों दावों को समय-बाधित और मध्यस्थ द्वारा स्वीकार्य नहीं होने का दावा किया गया था।दावा संख्या 2 के संबंध में, यह भी कहा गया कि दावेदार किसी भी राशि का दावा करने का हकदार नहीं था क्योंकि उसे विचाराधीन अनुबंध की शर्त संख्या 65 के तहत ऐसा करने के लिए स्पष्ट रूप से मना किया गया था।

(25) विचाराधीन अनुबंध का खंड 70 निम्नलिखित शर्तों में है:

"70. अनुबंध के पक्षों के बीच सभी विवाद (उन विवादों के अलावा जिनके लिए सी. डब्ल्यू. ई. का निर्णय या कोई अन्य विवाद)

अन्य व्यक्ति उस अनुबंध द्वारा है जिसे अंतिम और बाध्यकारी बताया गया है), किसी भी पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को अनुबंध के लिए लिखित सूचना के बाद, निविदा दस्तावेजों में उल्लिखित प्राधिकरण द्वारा नियुक्त किए जाने वाले इंजीनियर अधिकारी को एकमात्र मध्यस्थता के लिए भेजा जाएगा।

जब तक पक्ष अन्यथा सहमत नहीं होते हैं, तब तक ऐसा संदर्भ पूरा होने, कथित रूप से पूरा होने या कार्यों को परित्यागने या अनुबंध के निर्धारण के बाद तक नहीं होगा।

यदि इस प्रकार नियुक्त मध्यस्थ अपनी नियुक्ति से इस्तीफा दे देता है या अपना पद खाली कर देता है या किसी भी कारण से कार्य करने में असमर्थ या अनिच्छुक है, तो उसे नियुक्त करने वाला प्राधिकारी उसके स्थान पर कार्य करने के लिए एक नया मध्यस्थ नियुक्त कर सकता है।

यह माना जाएगा कि मध्यस्थ ने सुनवाई की तारीख तय करते हुए दोनों पक्षों को नोटिस जारी करने की तारीख को संदर्भ दर्ज किया है।

मध्यस्थ, समय-समय पर पक्षों की सहमति से, निर्णय देने और प्रकाशित करने के लिए समय बढ़ा सकता है।

मध्यस्थ उसे संदर्भित मामले पर अपना निर्णय देगा और विवाद के प्रत्येक व्यक्तिगत मदों पर अलग-अलग दिए गए राशियों के साथ उसके निष्कर्षों को इंगित करेंगे।

मध्यस्थता का स्थान ऐसा स्थान या स्थान होगा जो मध्यस्थ द्वारा अपने विवेकाधिकार पर तय किया जा सकता है

मध्यस्थ का निर्णय अंतिम होगा और!अनुबंध के लिए दोनों पक्षों पर बाध्यकारी।"

उक्त खंड के अवलोकन से पता चलेगा कि मध्यस्थ को व्यक्तिगत दावे के लिए अलग से निर्णय देना था।इसका मतलब है कि जितने दावे थे उतने ही निर्णय थे।इसका आगे यह अर्थ है कि (यदि न्यायालय, नीचे यह अभिनिर्धारित करता है कि मध्यस्थ को दावे संख्या 1 और 2 पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है-जिन्हें सीमा द्वारा वर्जित किया गया है-तो इसमें दावे संख्या 1 और 2 के लिए व्यक्तिगत पुरस्कारों को अलग करना शामिल होता और इसलिए, न तो निर्णय में कोई संशोधन शामिल था और न ही इसमें कोई छूट शामिल थी ।

यदि आपत्तियाँ प्रबल होती तो निर्णय शामिल होता ।इसलिए, आपत्तियों को खारिज करने वाले आदेश को व्यक्तिगत निर्णय को अलग करने से इनकार करने के रूप में माना जाना चाहिए न कि निर्णय को संशोधित करने या माफ करने से इनकार करने के रूप में।

(26) श्री बलबीर सिंह द्वारा उठाई गई अगली प्रारंभिक आपत्ति यह है कि, मध्यस्थता अधिनियम की खंड 17 को देखते हुए, निर्णय के खिलाफ कोई अपील सक्षम नहीं थी, क्योंकि निर्णय की घोषणा के बाद, एक डिक्री का पालन करना था और इस तरह के डिक्री के खिलाफ कोई अपील नहीं होती थी ऐसी डिक्री सक्षम थी सिवाय इस आधार कि यह निर्णय से अधिक थी या उसके अनुसार नहीं थी।

(27) इस आपत्ति को अस्वीकार करने के लिए ध्यान दिया जाना चाहिए।मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की खंड 17 के प्रावधान केवल तभी आकर्षित होते हैं जब निचले न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को स्वीकार किया जाता है और जो आक्षेपित है वह डिक्री है और तब यह प्रावधान किया जाता है कि ऐसी डिक्री अंतिम होगी, सिवाय तब जब वह अधिनिर्णय से अधिक हो या उसके अनुसार न हो।

(28) निचली अदालत के समक्ष अगली प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई और जिसे दोहराया गया कि आपत्ति-याचिका के शपथ पत्र होना चहिये क्यो की निचली अदालत के समक्ष दायर किये जाने पर आपतियो के साथ कोई शपथ पत्र नहीं था इसलिए वे अधिकृत नहीं थे ।इस दृष्टिकोण के लिए, श्री बलबीर सिंह ने मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की खंड 33 की भाषा से समर्थन मांगा।खंड 33 आई. बी. आई. डी. निम्नलिखित शब्दों में हैः

> "33. मध्यस्थता समझौते का कोई भी पक्षकार या उसके अधीन दावा करने वाला कोई भी व्यक्ति जो मध्यस्थता समझौते या निर्णय के अस्तित्व या वैधता को चुनौती देना चाहता है या दोनों में से किसी एक का प्रभाव प्राप्त करना चाहता है, वह न्यायालय में लागू होगा और न्यायालय शपथपत्रों पर निर्णय/प्रश्न करेगाः
>
> बशर्त कि जहां न्यायालय इसे न्यायसंगत और समीचीन समझता है, वह अन्य साक्ष्यों पर भी सुनवाई के लिए आवेदन निर्धारित कर सकता है, और वह खोज और विवरण के लिए ऐसे आदेश पारित कर सकता है जो वह किसी मुकदमे में कर सकता है।"

(29) उपरोक्त धारा 33 आई. बी. आई. डी. के अवलोकन से पता चलेगा कि, कल्पना के किसी भी विस्तार से, प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है।'शपथपत्र' शब्द उक्त धारा के अंतिम छोर पर आता है, अर्थात जब न्यायालय को यह आदेश दिया जाता है कि यह कैसे था।

उसके समक्ष उठाए गए प्रश्न का निर्णय करने के लिए और उसमें जो प्रावधान है वह यह है कि न्यायालय शपथपत्रों पर प्रश्नों का निर्णय करेगा।1 इसका मतलब यह है कि न्यायालय के समक्ष उठाई गई आपत्तियों से उत्पन्न होने वाले मुद्दों पर, पहली बार में, पक्षों के हलफनामों पर निर्णय लिया जा सकता है।इसका मतलब यह नहीं है कि आपत्तियों को हलफनामों के साथ देना होगा।विवेकाधिकार न्यायालय के पास है जो प्रावधान को ध्यान में रखते हुए है कि क्या वह अकेले/हलफनामों पर उठाए गए प्रश्न का निपटारा करना चाहेगा।यदि वह ऐसा करता है, तो वह पक्षों के लिए शपथ पत्र के रूप में साक्ष्य की मांग कर सकता है।

(30) नीचे के न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी की ओर से ली गई अगली प्रारंभिक आपत्ति और इसमें दोहराया गया है कि प्रदर्शनी ए. 1/2 द्वारा पक्षकार समझौते में मध्यस्थता खंड को जोड़ने के लिए सहमत हुए थे, (जो समझौते की शर्त संख्या 70 है) निर्णय के संबंध में पहले से मौजूद शब्दों 'अंतिम और बाध्यकारी' के लिए 'निर्णायक' शब्द ने परिणामी निर्णय को मध्यस्थता/अधिनियम में या अन्यथा उल्लिखित किसी भी आधार पर निर्दोष बना दिया।

(31) श्री बलबीर सिंह ने अंग्रेजी विधि शब्दकोश, 1959-लंदन स्वीट एंड मैक्सवेल लिमिटेड जैसे विभिन्न आधिकारिक संकलनों में आने वाले 'निर्णायक' शब्द के अर्थ की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। वॉटन्स लॉ लेक्सिकन (चौथा संस्करण)-लंदन स्वीट एंड मैक्सवेल लिमिटेडः.रेडिन लॉ डिक्शनरी (दूसरा संस्करण), 1970-ओशियाना पब्लिकेशंस इंड, डॉब्स फेरी, एन. वाई. पी. रामतीर्थ अय्यर का कानून; ब्रिटिश भारत का शब्दकोश (मद्रास लॉ जर्नल ऑफिस, मायलापुर, 1980); वर्तमान अंग्रेजी का संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड शब्दकोश; ब्लैक का कानून शब्दकोश (चौथा संस्करण)। - सेंट. पॉल, मिन, वेस्ट पब्लिशिंग कं. 1951, और फंक एंड वांगनल्स स्टैंडर्ड हैंडबुक ऑफ सिनॉनिम्स, एंटॉनिम्स एंड प्रीपोजिशन (फंक एंड वांगनल्स कंपनी, इंक. न्यूयॉर्क)); और आयकर अधिनियम की खंड 225 की उप-खंड (4) का अर्थ लगाने वाले निर्णय के लिए भी (इस संबंध में देखें भारत संघ बनाम डी. पी. वाडिया एंड संस, (4) और इसके अलावा भारतीय साक्ष्य अधिनियम की खंड 4 की खंड 4 के शब्दों को देखें।

(32) हमारी राय में, इस निर्णय को उन विभिन्न उद्धरणों का बोझ डालना अनावश्यक है जो श्री बलबीर सिंह ने विधि शब्दकोशों से उद्धृत किए हैं और जो उपरोक्त बॉम्बे निर्णय के विवरण और अनुपात के साथ हैं, क्योंकि हमारी दृढ़ता से राय है कि निर्णय के संबंध में मौजूदा शब्दों 'अंतिम और बाध्यकारी' में 'निर्णायक' शब्द को जोड़ने से निर्णय के अधिकार में बिल्कुल भी वृद्धि नहीं हुई है।हमारे विचार से, यह 'अति-हत्या' का मामला है।बंधन की प्रकृति

(4) ए. आई. आर. टी977 बम। 10.

'निर्णायक' शब्द को जोड़े बिना भी पक्षकार समान थे।यदि 'निर्णायक' शब्द को जोड़कर प्राप्त करने का उद्देश्य यह था कि मध्यस्थता अधिनियम में उल्लिखित किसी भी आधार पर मध्यस्थता को निर्विवाद बनाया जाना था, तो हमारे विचार में पक्षकार अपने प्रयास में अकेले विफल रहे।यह उद्देश्य इस बात पर प्राप्त किया जा सकता था कि 'मध्यस्थता अधिनियम में या अन्यथा उल्लिखित किसी भी आधार पर किसी भी पक्ष द्वारा निर्णय पर महाभियोग नहीं चलाया जाएगा' शब्दों को मध्यस्थता खंड में जोड़ा गया था।यहां तक कि जब मध्यस्थता खंड में सुझाया गया जोड़ किया गया था, तब भी निर्णय को रद्द किया जा सकता था यदि यह स्थापित किया गया था कि अनुबंध, जिसमें से उस प्रकार का मध्यस्थता खंड सुझाया गया था, एक हिस्सा था, इस मायने में अवैध था कि आपत्ति करने वाले पक्ष को या तो उस अनुबंध में प्रवेश करने के लिए प्रेरित किया गया था या (उस अनुबंध में प्रवेश करने के लिए उस पर) अनुचित प्रभाव डाला गया था।

(33) उपरोक्त कारणों से, हम विद्वान अधिवक्ता के इस प्रस्तुतिकरण में कोई योग्यता नहीं पाई हैं।

(34) अब योग्यता के आधार पर अपील पर विचार करने के लिए मंच तैयार है।

(35) श्री छिब्बर द्वारा प्रस्तुत किया गया तर्क यह है कि दावे संख्या 1 और/2 विचाराधीन अनुबंध के खंड 11 (सी) और 63 के कारण मध्यस्थ के लिए संदर्भित नहीं थे।वैकल्पिक रूप से, उनका निवेदन है कि दोनों दावों को सीमा द्वारा वर्जित किया गया था और इसलिए, मध्यस्थ के पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था।

(36) (चैंप्से भरा कंपनी बनाम द जीवराज बल्लू स्पिनिंग एंड वीविंग कंपनी लिमिटेड*)* में प्रिवी काउंसिल के उनके लॉर्डशिपः*(5),* स्पष्ट रूप से संकेत दिया है कि यह आदेश लगाने के लिए कि किस विवाद का उल्लेख किया गया है, किसी को समझौते में संदर्भित खंड, यानी मध्यस्थता खंड को देखना होगा, न कि समझौते के अन्य खंडों और शर्तों को।उस मामले में, पक्षों ने कपास खरीदने के लिए एक समझौता किया था।कपास की गुणवत्ता को लेकर विवाद पैदा हो गया।उस मध्यस्थ की गुणवत्ता, जिसे बॉम्बे कॉटन ट्रेड एसोसिएशन लिमिटेड के नियमों और विनियमों के नियम 12 के संदर्भ में नियुक्त किया गया थाः(इसके बाद एसोसिएशन के रूप में संदर्भित), निर्णय ऐसा था कि समझौते के तहत खरीदार कपास को अस्वीकार कर सकता था।खरीदार ने तदनुसार कपास को अस्वीकार कर दिया।उस मामले में समझौते के खंड 52 ने खरीदार को ऐसी स्थिति में या तो बाजार से कपास खरीदने और विक्रेता से मुआवजे का दावा करने का विकल्प दिया, अगर उसे अधिक भुगतान करना पड़ा।

(5) ए. आई. आर. 1923 पी. सी. 66.

कपास के लिए जो उसने विक्रेता को भुगतान करने या ठेकेदार को संबंधित तिथि पर प्रचलित बाजार मूल्य पर कपास के लिए आदेश देने के लिए अनुबंध किया था।उस मामले में खरीदार ने ऐसा नहीं किया।इसके बाद, विक्रेता ने रुपये का दावा किया। 25, 000/- हर्जाने के रूप में और एसोसिएशन के नियम 13 के तहत मामले को मध्यस्थ को भेजा गया।यह मामला उच्च न्यायालय तक पहुंच गया। एकल न्यायाधीश ने निर्धारित किया कि निर्णय में कोई त्रुटि नहीं थी।खण्ड पीठ ने इस आदेश को दरकिनार कर दिया।हालांकि) निर्णय एक गैर-भाषी था, फिर भी खण्ड पीठ ने इसकी इतनी व्याख्या की कि उन्होंने सोचा कि वे पार्टियों और बॉम्बे कॉटन ट्रेड एसोसिएशन लिमिटेड के नियमों और विनियमों के बीच पत्राचार का उल्लेख कर सकते हैं।उनके लॉर्डशिप्स ने कहा कि "विद्वान न्यायाधीशों का यह पता लगाने का एकमात्र तरीका है कि गलती क्या थी, यह कहना हैः'जहाँ तक 'मध्यस्थों को इस तरह से सम्मानित किया गया है, और जहाँ तक पत्र से पता चलता है कि खरीदार ने कपास को अस्वीकार कर दिया है, मध्यस्थ केवल खंड 52 की पूरी तरह से गलत व्याख्या करके उस परिणाम पर पहुँच सकते हैं'।
उनके लॉर्डशिप्स ने जारी रखा कि मध्यस्थों को खंड 52 या एसोसिएशन के किसी अन्य अनुच्छेद के लिए अपनी व्याख्या देने का अधिकार था और निर्णय तब तक मान्य रहेगा जब तक कि इसके बावजूद, मध्यस्थों ने खुद को किसी विशेष कानूनी प्रस्ताव से नहीं बांधा था, जिसकी जांच करने पर, उस बिंदु पर अनुचित प्रतीत होता था।

(37) फिर उनके अधिपत्य के समक्ष एक तर्क दिया गया कि अनुबंध के उचित निर्माण पर, जिस क्षण खरीदार ने मध्यस्थों के निर्णय के आधार पर कपास को उसकी गुणवत्ता के आधार पर अस्वीकार कर दिया, वह ऐसा करने का हकदार था, और अनुबंध को अस्वीकार कर दिया गया था या समाप्त हो गया था और तब मध्यस्थता खंड के खिलाफ अपील नहीं की जा सकती थी, और चूंकि यह अधिकार क्षेत्र के लिए एक याचिका थी, इसलिए अदालत को इसका फैसला करना चाहिए था।

मध्यस्थों की अधिकार क्षेत्र पर सवाल उठाने वाले उक्त तर्क को खारिज करते हुए, उनके प्रमुखों ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

> "उनके प्रभुओं का मानना है कि यह तर्क विचार के भ्रम पर आधारित है।यह प्रश्न कि क्या कोई मध्यस्थ अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर कार्य करता है, निश्चित रूप से न्यायालय को यह तय करना है, लेकिन क्या मध्यस्थ अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर कार्य करता है या नहीं, यह पूरी तरह से संदर्भ के खंड पर निर्भर करता है।

उस मामले में, मध्यस्थता खंड खंड 13 था और इसलिए, उनके लॉर्डशिप्स ने कहा कि यह निर्णय लेना न्यायालय का काम है!मामला

जो विवाद उत्पन्न हुआ था वह समझौते के खंड 13 के अंतर्गत आने वाला विवाद था या नहीं।

(38) वर्तमान मामले में, मध्यस्थता खंड 70 है जिसे पहले ही पुनः प्रस्तुत किया जा चुका था।अभिव्यक्ति "अनुबंध के पक्षों के बीच सभी विवादों को एकमात्र को संदर्भित किया जाना चाहिए। मध्यस्थता खंड में उपयोग किए गए 'निविदा दस्तावेजों' में उल्लिखित प्राधिकारी द्वारा नियुक्त किए जाने वाले इंजीनियर अधिकारी का मध्यस्थता बहुत व्यापक आयाम का है, हालांकि जिस संदर्भ में इसका उपयोग किया गया है, केवल ऐसे विवाद, जो केवल विचाराधीन अनुबंध से उत्पन्न होते हैं, उन्हें छोड़कर, जो स्पष्ट रूप से अपवाद हैं, मध्यस्थ के निर्धारण के लिए संदर्भित हैं।इसलिए जो सवाल विचार के लिए आता है वह यह है कि यह निर्धारित करने के लिए क्या परीक्षण है कि क्या कोई विशेष विवाद किसी अनुबंध से उत्पन्न होता है या उससे संबंधित है।

(39) ए. एम. मेर एंड कंपनी बनाम गोरधनदास सागरमुल (6) में सर्वोच्च न्यायालय के उनके अधिपत्य ने विवाद की प्रकृति की पहचान करने के लिए एक आसान परीक्षण का संकेत दिया है, जब उन्होंने फैसला सुनाया कि यदि किसी पक्ष को अपने दावे के समर्थन में या किसी दावेदार के खिलाफ बचाव के रूप में अनुबंध का उल्लेख करना है या उसका सहारा लेना है, तो ऐसा विवाद अनुबंध के तहत एक विवाद है।

(40) क्या दावा सीमा द्वारा वर्जित है, किसी को पक्षों के बीच समझौते के प्रासंगिक खंडों पर गौर करना होगा।पुनः, (यह पता लगाने के लिए कि क्या दावेदार को किसी दी गई राशि या किसी राशि का दावा करने से रोक दिया गया था, किसी को फिर से विचाराधीन अनुबंध के खंड 11 (सी) और 63 का उल्लेख करना होगा।ए. एम. मायर एंड कंपनी के मामले (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय के उनके अधिपत्य द्वारा इंगित परीक्षण को देखते हुए, यह कहा जा सकता है (विरोधाभास के डर के बिना कि परिसीमन के अनुरोध या बहिष्कार के अनुरोध से संबंधित विवाद अनिवार्य रूप से समझौते से उत्पन्न होता है या उससे संबंधित होता है और इसलिए, मध्यस्थ की अधिकार क्षेत्र के भीतर होता है।

(41) यह कि सीमा की याचिका मध्यस्थ को विचार करने के लिए है और यह मध्यस्थ के अधिकार क्षेत्र के मूल तक नहीं जाती है, ऐसा मामला नहीं है जो एकीकृत है।वजीर ′चंद महाजन और एक अन्य बनाम भारत संघ (7) में सर्वोच्च न्यायालय के उनके अधिपत्य ने आधिकारिक रूप से निर्धारित किया है कि -

> "(मध्यस्थता समझौता दायर करने के लिए एक आवेदन के साथ, न्यायालय को इसके अस्तित्व के बारे में खुद को संतुष्ट करना चाहिए)

(6)ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 9.

(7) ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 990।

> एक लिखित समझौता जो वैध और विद्यमान है और जिसे किसी मुकदमा की स्थापना के समक्ष निष्पादित किया गया है, और यह भी कि समझौते के विषय-वस्तु के संबंध में एक विवाद उत्पन्न हुआ है, जो न्यायालय की अधिकार क्षेत्र के भीतर है। लेकिन न्यायालय इस प्रश्न से निपटने के लिए उस आवेदन पर विचार करने में चिंतित नहीं है कि क्या मध्यस्थता समझौते के लिए किसी पक्ष का दावा कानून द्वारा सीमित है; वह प्रश्न मध्यस्थ के प्रांत के भीतर आता है जिसे विवाद भेजा जाता है।"

सामान्य रूप से न्यायालयों के संदर्भ में सीमा के प्रश्न पर विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के उनके अधिष्ठाताओं ने इत्तियावीरा मथिया बनाम वर्की वर्की और एक अन्य (8) में नियम का प्रतिपादन किया है कि न्यायालय को सीमा के प्रश्न पर निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र है जिसे वह सही या गलत तरीके से तय कर सकता है।यदि यह गलत निर्णय लेता है, तो इस तरह के आदेश को अमान्य नहीं कहा जा सकता है।

(42) रोक की दलील के संबंध में, स्थिति) विवाद से परे है।दामोदर घाटी निगम बनाम के. के. कर, *(9)* में उच्चतम न्यायालय के उनके अध्यक्षों को न्यायालय के समक्ष की गई इसी तरह की याचिका से जूझना पड़ा, जो मध्यस्थता अधिनियम की धारा 9 (बी) और 33 के तहत एक आवेदन पर विचार कर रही थी। न्यायालय को इस कथन की सच्चाई और वैधता की जांच करने की आवश्यकता थी कि क्या इस आधार पर कोई अंतिम समझौता था या नहीं कि यदि वह साबित हो जाता है, तो वह मध्यस्थता के संदर्भ को रोक देगा क्योंकि मध्यस्थता खंड स्वयं नष्ट हो जाएगा।इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि क्या अनुबंध के तहत दावे का पूर्ण और अंतिम निपटान हुआ था, यह प्रश्न अपने आप में अनुबंध के संबंध में 'पर' या 'संबंध में' या 'संबंध में' उत्पन्न होने वाला विवाद है।हर्जाने के लिए दावा एक विवाद या अंतर था जो प्रतिवादी और अपीलकर्ता के बीच उत्पन्न हुआ और अनुबंध के संबंध में था और प्रतिवादी द्वारा मध्यस्थ को संदर्भित करने पर रोक नहीं थी।

(43) उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, दोनों दावे संख्या 1 और 2 पी।28 विचाराधीन अनुबंध के खंड 70 के आधार पर मध्यस्थ को वैध रूप से संदर्भित किया गया था और मध्यस्थ को उक्त दावों के संबंध में अपना निर्णय देने का पूरा अधिकार क्षेत्र था।89

(8) ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 907.
(9) ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 158.

(44) ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी की ओर से श्री बलबीर सिंह ने इस मामले में काफी शोध किया है और हमें उन याचिकाओं पर विस्तार से संबोधित किया है जिन्हें वैकल्पिक रूप से इस धारणा पर आगे बढ़ाया जा सकता है कि परिसीमा और रोक की याचिकाएं मध्यस्थ के अधिकार क्षेत्र की जड़ तक गईं।

(45) हमारे इस स्पष्ट निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि मध्यस्थ के पास आक्षेपकर्ता-अपीलार्थी की ओर से उठाए गए सीमा और रोक के प्रश्नों में जाने का अधिकार क्षेत्र था, क्योंकि ये ठेकेदारों, प्रतिवादी के दावे के बचाव में केवल दलील थीं, जिसकी विचाराधीन अनुबंध के प्रासंगिक खंडों के सम्मान के साथ जांच करना मध्यस्थ का कर्तव्य था, वैकल्पिक में श्री बलबीर सिंह द्वारा की गई प्रस्तुतियों से निपटना अनावश्यक है।

(46) महत्वपूर्ण प्रश्न जो अब विचार के लिए बचा हुआ है, वह यह है कि क्या मध्यस्थ ने बोलने का निर्णय नहीं देने में कानूनी रूप से खुद को गलत तरीके से पेश किया और इस प्रकार एक त्रुटि से निर्णय को पीड़ित किया; इसके बावजूद कि वह बोलने वाला नहीं है।

(47) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आर. के. छिब्बर ने ब्रह्म नाथ दत्त बनाम धनी राम *(10)* पर भरोसा करते हुए कहा कि मध्यस्थ द्वारा मध्यस्थ के समक्ष उठाई गई सीमा की याचिका पर विचार करते समय, मध्यस्थ उसे अस्वीकार करने के लिए कारण देने के लिए बाध्य था-दूसरे शब्दों में, उसे एक तर्कपूर्ण निर्णय पारित करना था।

(48) प्रतिवादी की ओर से पेश श्री बलबीर सिंह ने याचिका का विरोध करते हुए आग्रह किया कि एक मध्यस्थ बोलने का निर्णय देने के लिए बाध्य नहीं है और एन. चेलप्पन बनाम सचिव, केरल राज्य विद्युत बोर्ड और एक अन्य *(11)* में रिपोर्ट किए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से अपने प्रस्तुत करने के लिए पोषण प्राप्त करता है, और मेथेव, जे. द्वारा दिए गए फैसले के पैराग्राफ 12 की ओर ध्यान आकर्षित किया, जो नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

"उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इस प्रश्न पर कोई निर्णय नहीं दिया कि उसने अपने आदेश द्वारा एक नया निर्णय पारित करने के लिए पूरे मामले को मध्यस्थों को भेज दिया है।हमें नहीं लगता कि बोर्ड के विवाद में कोई सार है।निर्णय में, अंपायर ने इस शीर्ष के तहत दावों और तर्कों का उल्लेख किया है

(10) ए. आई. आर. 1956 पी. बी. 125.

.(11) ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 230.

बोर्ड के दावे को अस्वीकार करने के लिए और फिर इस शीर्ष के तहत अंपायर के निष्कर्षों के प्रश्न को स्पष्ट रूप से स्वीकार किए बिना या निर्णय किए बिना राशि प्रदान करने के लिए यह नहीं देखा गया है कि इन दावों को सीमा द्वारा बाधित किया गया था। फैसले से पता चलता है पर कानून की कोई गलती नहीं है क्योंकि एकमात्र मध्यस्थ एक तर्कपूर्ण निर्णय देने के लिए बाध्य नहीं था और यदि निर्णय पारित करने में वह कानून या तथ्य की गलती करता है, तो यह निर्णय की वैधता को चुनौती देने के लिए कोई आधार नहीं है।यह केवल तभी होता है जब निर्णय में कानून का कोई प्रस्ताव कहा जाता है-और जो निर्णय का आधार है, और जो गलत है, निर्णय को रिकॉर्ड के सामने स्पष्ट कानून की त्रुटि के आधार पर रद या माफ किया जा सकता है।

(49) ब्रह्म नाथ दत्त का मामला (उपरोक्त) किसी भी तरह से यह निर्धारित नहीं करता है कि मध्यस्थ को बोलने का निर्णय देना पड़ता है।उस मामले में न्यायालय ने केवल यह कहा था कि जब सीमा की याचिका उठाई गई थी तब भी मध्यस्थ अपना निर्णय देने की जिम्मेदारी से बच नहीं सकता था-वह अपना निर्णय देने के लिए बाध्य था।

(50) एन. चल्लापन का मामला (ऊपर दिया गया) इस बिंदु पर एक निर्णायक है कि एक मध्यस्थ मौखिक आदेश देने के लिए बाध्य नहीं है।यहां तक कि जहां अधिनिर्णय में सीमा का कोई विशिष्ट संदर्भ नहीं दिया गया है, मध्यस्थ को राशि प्रदान करके सीमा के अनुरोध को अस्वीकार करके सीमा के दलील को खारिज कर दिया है ।

आई.

(51) दोनों पक्षों में से किसी ने भी इस तथ्य के संबंध में दलीलों को संबोधित नहीं किया था कि क्या समझौते के खंड 70 का इस मुद्दे पर कोई प्रभाव पड़ेगा कि क्या वर्तमान मामले में मध्यस्थ को फैसला देना है या नहीं।आई.

(52) हमने अपील को खारिज करते हुए अपना फैसला सुनाया था।निर्णय लिखते समय, और विशेष रूप से इस मुद्दे पर विचार करते समय, उन्होंने समझौते का, विशेष रूप से उसके खंड 70 का बारीकी से अध्ययन किया, 'मध्यस्थ उसे संदर्भित सभी मामलों पर अपना निर्णय देगा और अपने निष्कर्षों को इंगित करेगा' अभिव्यक्ति ने कुछ संदेह पैदा किया [उस राय की शुद्धता के बारे में जो हमने एन. चलप्पन के मामले (उपरोक्त) के बल पर तैयार की थी कि मध्यस्थ एक मौखिक आदेश निर्णय देने के लिए बाध्य नहीं था।हमने सोचा कि हो सकता है कि पक्षकार मध्यस्थ को समझौते के खंड 70 के आधार पर एक तर्कपूर्ण निर्णय देने के लिए सहमत हुए हों।हम, इसलिए, पुनः सुनवाई के लिए अपील निर्धारित करते हैं और दोनों पक्षों को सूचित करते हैं कि हमें उनसे किस अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता है।

(53) श्री छिब्बर ने हमसे दृढ़ता से आग्रह किया कि समझौते का खंड 70, जिसके तहत मध्यस्थ को अपने निष्कर्षों को इंगित करने की आवश्यकता होती है, उसे अनिवार्य शर्तों में मौखिक आदेश देने की जरूरत होती है

(54) यद्यपि खंड 70 के निम्नलिखित पैराग्राफ का सतही अध्ययन श्री छिब्बर के तर्क को सार प्रदान करता प्रतीत हो सकता है, लेकिन उसी का एक करीबी विश्लेषण तर्क के खोखलेपन को प्रकट करता हैः

> "मध्यस्थ उसे निर्दिष्ट किए गए सभी मामलों पर अपना निर्णय देगा और विवाद की प्रत्येक व्यक्तिगत वस्तु पर अलग-अलग दिए गए राशियों के साथ अपने निष्कर्षों को इंगित करेगा।"

विचाराधीन खंड 70 के निकाले गए भाग में मध्यस्थ को दो चीजें करने की आवश्यकता होती है (i) उसे निर्दिष्ट किए गए सभी मामलों पर निर्णय देने के लिए, और (ii) विवाद की प्रत्येक व्यक्तिगत वस्तु पर अलग-अलग दिए गए राशियों के साथ अपने निष्कर्षों को इंगित करने के लिए।'संदर्भित मामले' अभिव्यक्ति में इसके दायरे में विवादित दावा शामिल होगा न कि दोनों पक्षों की ओर से उठाई गई दलीलें कि दावा की गई राशि क्यों दी जा सकती है या क्यों नहीं दी जा सकती है।

(55) इसमें प्रतिवादी ने अपना अपेक्षित दावा प्रस्तुत किया था, जो दूसरे पक्ष को स्वीकार्य नहीं था, और उनसे मध्यस्थ को निर्णय के लिए अपने दावे को संदर्भित करने की आवश्यकता थी और ये वे दावे थे जिन्हें मध्यस्थ को भेजा गया था।यह केवल तब होता है जब मध्यस्थ दूसरे पक्ष को सूचित करता है कि प्रतिवादिओ (ठेकेदारों) के दावे को मध्यस्थता के लिए उसके पास भेजा गया था कि अपीलकर्ता अन्य बातों के साथ साथ बातों के साथ-साथ सीमा और रोक की याचिका को उठाते हुए अपना जवाब दाखिल किया।मध्यस्थ को जो संदर्भित किया गया था वह विवादित राशि थी न कि इस बारे में दलीलें कि ठेकेदार उक्त राशि का हकदार क्यों था या बचाव पक्ष में उठाई गई दलीलें जो यह दर्शाती हैं कि ठेकेदार उक्त राशि के हकदार क्यों नहीं थे।'उसके निष्कर्षों को इंगित करें' अभिव्यक्ति से निपटने के दौरान, प्रतिवादी-ठेकेदारों की ओर से यह तर्क दिया गया था कि निष्कर्ष कारणों से अलग है-निष्कर्ष एक निष्कर्ष है जो कारणों से अलग है।

(56) हम सोचते हैं कि प्रतिवादी की ओर से पेश किए गए दृष्टिकोण में काफी योग्यता है।जिस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है, वह उन कारणों से अलग है जो किसी दिए गए निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।कारणों को उचित रूप से 'तथ्यों और निष्कर्षों के बीच संबंध' के रूप में वर्णित किया गया है।

(57) इसके अलावा, खंड 70 द्वारा अपेक्षित निष्कर्षों को व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है।ये निहितार्थ से भी अनुमानित हो सकते हैं और इसलिए, अभिव्यक्ति 'इंगित' का उपयोग परिकल्पित रूप से किया गया है।"है' को इंगित करने के लिए 'सुझाव देना'।यह सुझाव निहितार्थ से भी हो सकता है जैसे 'धुआं आग को इंगित करता है'।

(58) हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक निर्णय के हिस्से को मध्यस्थ द्वारा निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया है:

> "जबकि पार्टियों के बीच कुछ मतभेद उनके बीच लिखित अनुबंध से उत्पन्न हुए, सीए नं। CEW-25/63-64 चंडीगढ़ में कुछ तकनीकी भवनों के प्रावधान के लिए, और जबकि मुझे कार्य महानिदेशक पत्र संख्या 13660। WC। 94। E8, दिनांक 11 मार्च, 1974 के माध्यम से मामले में एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त किया गया था।अब, मैं, YL सुब्रमण्यम, संदर्भ का भार अपने ऊपर लेते हुए और पक्षों के बयानों और उनके द्वारा मेरे सामने प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्य को सुनने, जांचने और विचार करने के बाद, मुझे संदर्भित मामलों के बारे में लिखित रूप में और संबंधित रूप से इसे अपना अंतिम निर्णय सुनाता हूं और प्रकाशित करता हूं।

प्रत्येक दावे से अलग-अलग निपटते हुए मैं निम्नलिखित निर्देश देता हूं:1. दावेदार का दावा संख्या *1*।

> कार्य को पूरा करने में देरी के लिए अतिरिक्त रु। 1,1,59,750.The दावा आंशिक रूप से कायम है।रु. की राशि। 50, 000 (केवल पचास हजार रुपये) दावेदार को दिए जाते हैं।

2. दावेदार का दावा सं. *2*।

> (ए) ईंटों और (बी) लोहे/इस्पात की वस्तुओं और सेनेटरी फिटिंग की कीमतों में वृद्धि के लिए अतिरिक्त।रु. 46, 640 और (बी) रु। 5, 000।ईंटों की कीमत के लिए दावा आंशिक रूप से कायम है।रु. की राशि। दावेदार को 17,500 (केवल सत्रह हजार पाँच सौ रुपये) दिए जाते हैं।रुपये के लिए दावा। 5, 000 (रु. केवल पाँच हजार) दावेदार द्वारा वापस लिया जाता है।"

भारत संघ बनाम जय नारायण मिश्रा (12) में उनके लॉर्डशिप्स द्वारा [अभिव्यक्ति 'दिया जा रहा निर्णय और संदर्भित मामलों से संबंधित' के उपयोग का अर्थ यह समझा गया है कि मध्यस्थ

(12) ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 753.

उन मामलों के संबंध में अपना निर्णय दिया है जो उन दावों और दावों से संबंधित हैं, और उससे पहले श्रीमती. सांता सिला देवी और।एक अन्य बनाम धीरेंद्र नाथ सेन और अन्य (13), इस अभिव्यक्ति का अर्थ लगाते हुए, सर्वोच्च न्यायालय के उनके अधिपत्यों ने यह अभिनिर्धारित किया था कि जहां निर्णय सभी मामलों के संबंध में और संबंधित था, इसका अर्थ था कि मध्यस्थ ने बचाव याचिकाओं सहित सभी मामलों को निपटाया था।

(59) निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि मध्यस्थ ने विवाद की प्रत्येक वस्तु पर अपना निर्णय अलग से दिया है।साथ ही किसी विशेष दावे के संबंध में दी गई राशि प्रदान करते समय उनके पास नहीं थी।केवल विचाराधीन खंड 70 की अन्य आवश्यकता, अर्थात राशि को 'इंगित' करने का अनुपालन किया, लेकिन इस प्रकार उन्होंने उक्त दावे से संबंधित सभी मामलों के संबंध में अपने निष्कर्ष भी दिए थे, जिसमें वे याचिकाएं भी शामिल थीं जो उनके समक्ष उक्त राशि देने के पक्ष या विपक्ष में उठाई गई थीं।

(60) उपरोक्त कारणों से, हमारा स्पष्ट रूप से यह विचार है कि मध्यस्थ मौखिक निर्णय देने के लिए बाध्य नहीं था और उसके द्वारा दिया गया निर्णय पूरी तरह से वैध और कानूनी है।

(61) परिणामस्वरूप, हम इस अपील में कोई योग्यता नहीं पाते हैं और इसे खारिज करते हैं, लेकिन लागत के रूप में कोई आदेश नहीं है।

एनके. एस.

अस्वीकरण :- स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सिमित उपयोग के लिए हैं ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यन्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा

Nar singh translator

इससे पहले बी. एस. ढिल्लों और एम. आर. शर्मा, जे. जे.

डिप्टी चीफ मैकेनिकल इंजीनियर,-याचिकाकर्ता।

बनाम

जोगिंदर सिंह,-उत्तरदाता।

1979 का सिविल संशोधन सं. 1109।

21 जुलाई, 1980।

मजदूरी का बहुलक अधिनियम *(1936* का चतुर्थ)-खंड *1* और *15*-किसी कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने वाले नियोक्ता द्वारा पारित आदेश की खंड *15* के तहत स्थापित प्राधिकरण-इसकी वैधता-क्या ऐसे प्राधिकरण के समक्ष चुनौती दी जा सकती है।

अभिनिर्धारित किया गया कि मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 की खंड **7** के स्पष्टीकरण II में प्रयुक्त भाषा से पता चलता है कि मजदूरी की कटौती इस प्रकार की गई है:

(13) ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1677